चाहिए - चाहिए - चाहिए

स्वस्थ रोगी परीक्षण के लिए

दिनेश सी शर्मा

इन दिनों पुणे स्थित राष्ट्रीय एड्स शोध संस्थान को ३८ ऐसे स्वस्थ महिलाओं और पुरूषों की आवश्यकता है जिन पर भारत के पहले एड्स टीके का परीक्षण किया जा सके। इसके लिए संस्थान भरसक प्रयत्न कर रहा है। जगह-जगह स्थानीय गैर सरकारी संगठनों, विश्वविद्यालय विद्यार्थियों, सामाजिक संस्थानों और यहां तक कि धार्मिक संस्थानों के लोगों से बातचीत की जा रही है। एड्स उन्मूलन में भारत के लिए इस टीके का क्या महत्व होगा, इसे लेकर लोगों को समझाया जा रहा है ताकि इन्हें इसके परीक्षण में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया जा सके। धार्मिक संस्थाओं से जुड़े लोगों को एड्स टीके के परीक्षण में शामिल करने का विचार वैज्ञानिकों को थाईलैंड से मिला। थाईलैंड में हुए परीक्षणों में वहां के बौद्ध भिक्षुओं ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। ऐसा समझा जाता है कि धर्म से जुड़े लोग परोपकार या जनहित के लिए नई दवाओं या टीकों के परीक्षणों में भाग लेने के लिए राजी हो जाते हैं। अलग-अलग तरह के लोगों को परीक्षण का हिस्सा बनाने के लिए पुणे का संस्थान अख़बारों में विज्ञापन दे कर स्वयंसेवकों को आमंत्रित करने की भी सोच रहा है। यह टीका भारत में पनप रहे एचआईवी के सबटाईप से लड़ने के लिए विकसित किया गया है। वैसे तो एचआईवी एक ही है, लेकिन उसके कई सबटाईप या प्रकार हैं जैसे थाई वायरस अलग हैं, अफ्रीका का वायरस अलग है और अमरीका का अलग। इसीलिए कई टीकों पर शोध एक साथ चल रहा है। भारतीय सबटाईप के लिए बने टीके पर भी काम अमेरिका में ही शुरू हुआ था। लेकिन वहां पर यह काम कलकत्ता के एक भारतीय वैज्ञानिक कर रहे थे। अमरीका में हुई शुरूआती खोज के बाद का काम भारत में हुआ। इसलिए यह टीका भारतीय उपलब्धि माना जा रहा है और इसका परीक्षण भी भारत में ही होगा। यानि यह टीका पूरी तरह अमरीका में ही विकसित किया जाता, तो मौजूदा कानून के अनुसार इसका परीक्षण भारत में नहीं हो सकता।

वास्तव में शोध के जरिए नई दवाओं और टीकों का विकास एक लंबी, जटिल और बेहद खर्चीली प्रक्रिया है। आरंभिक खोज से मानव परीक्षण तक पहुंचने में कई बार ८ से १० साल तक लग सकते हैं और खर्च भी कई करोड़ तक हो सकता है। सबसे पहले किसी भी नई दवा का परीक्षण प्रयोगशाला में होता है, परखनलियों में। यहां पर सफलता मिलने पर छोटे जानवरों पर इसका परीक्षण होता है। इस चरण में कई प्रकार के जानवर इस्तेमाल होते हैं - चूहे, खरगोश, बिल्लियां आदि। यदि इन जानवरों पर दवा का असर सकरात्मक रहे तो, बड़े जानवरों को यह दवा दी जाती है। यह परीक्षण ज्यादातर अलग-अलग प्रकार के बंदरों में किए जाते हैं। इन सारे परीक्षणों में नई दवा के असर के अलावा दुष्प्रभाव और विषैलेपन या टॉक्सिसिटी को आंका जाता है। इन सभी परीक्षणों के नतीज़ों के आधार पर दवा नियंत्रक और अन्य नियामक एजेंसियों से मानव परीक्षण की इज़ाजत मांगी जाती है। इस आवेदन में मानव परीक्षण की जरूरत, किस प्रकार यह परीक्षण किया जाएगा, कौन से शोधार्थी और हॉस्पिटल इसमें शामिल होंगे आदि सारी जानकारियां देनी होती हैं। और हर चरण के बाद दवा नियंत्रक को परीक्षण के नतीजों से अवगत कराना होता है।

मानव परीक्षणों में भी नई दवा को तीन चरणों से हो कर गुजरना पड़ता है। पहले चरण जिसे फेज़ वन क्लिनिकल ट्रायल कहते हैं, में दवा की सुरक्षा और शरीर में प्रतिरोध क्षमता पैदा करने की क्षमता को आंका जाता है। इसके साथ ही अलग-अलग मात्रा में दवा देकर, मात्रा तय करने की भी कोशिश की जाती है। साधारणतः फेज़ वन में १० से ३० स्वस्थ मानवों पर परीक्षण होता है। इस प्रक्रिया में १२-१८ महीने लगते हैं। दूसरे चरण यानि फेज़ टू में यही प्रक्रिया ५०० तक स्वयंसेवकों में दहुराई जाती है। इस चरण को पूरा करने में भी लगभग दो साल लग सकते हैं। मानव परीक्षण के तीसरे चरण में हज़ारों की संख्या में नई दवा बीमार लोगों को दी जाती है। जैसे एचआईवी के टीके के परीक्षण में यह एचआईवी ग्रस्त लोगों को दिया जाएगा। साथ ही इसी संख्या में बीमार लोगों को प्लेसिबो (जो मात्र नमकीन पानी होता है) दिया जाता है। इसे देने वाले डॉक्टर और लेने वाले मरीज दोनों को यह पता नहीं होता कि यह असली दवा नहीं है। परीक्षण के बाद में दोनो समूहों (जिन्हें असली दवा दी गई और जिन्हें प्लेसिबो दिया गया) के नतीज़ों की तुलना की जाती है। और यदि फेज तीन का परीक्षण दवा नियंत्रक की दृष्टि में सफल पाया जाता है, तो दवा/टीके उत्पादन और मार्किटिंग की मंजूरी दे दी जाती है। तीसरे चरण में ये देखा जाता है कि क्या वास्तव में नई दवा बीमारी को पूरी तरह खत्म करने की क्षमता रखती है या नहीं। तीसरे चरण की प्रक्रिया पूरी होते-होते ३-४ साल लग सकते हैं।

इस हिसाब से यदि २००४ में भारतीय एड्स टीके के मानव परीक्षण शुरू होते हैं तो इसे कायदे से पूरा होने में ६ से ८ साल लग सकते हैं। और इसके बाद भी कोई गारंटी नहीं कि यह सफल हो। अन्य देशों में एड्स के टीके फेज़ तीन परीक्षणों के बाद फेल हो चुके हैं। वास्तव में किसी भी चरण के असफल होने पर तुरंत मानव परीक्षणों को रोक देना पड़ता है। और हर चरण में नतीज़ों की पूरी जानकारी दवा नियंत्रक को दी जानी चाहिए। हर बार नए परीक्षण शुरू करने के लिए अलग मंजूरी लेना जरूरी है। आवश्यकतानुसार दवा नियंत्रक किसी चरण को एक साथ या मिला कर पूरा करने की इज़ाजत भी दे सकता है।

नई दवाओं को बाज़ार में लाने की इस लंबी प्रक्रिया के चलते, बहुत कम नई दवाएं सफल हो पाती हैं। जो सफल होती हैं उनके निर्माता उनसे पूरी तरह मुनाफा कमाने की कोशिश करते हैं। लेकिन पिछले दशक में बायोटेक्नालाजी के क्षेत्र में हुई प्रगति और मानव जीनोम से प्राप्त हो रहे नए ज्ञान के चलते, नई दवाएं विकसित करने की संभावनाएं बढी हैं इसीलिए नई दवाओं का बाज़ार एक बार फिर गरमा रहा है। बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों की कोशिश है कि किसी तरह नई दवाओं के विकास और परीक्षण का समय कम किया जाए। ८-१० साल के बजाए परीक्षण २-३ माह में ही पूरे कर दिए जाएं ताकि प्रयोगशाला से बाज़ार का सफर कम समय में पूरा किया जा सके। इस सोच के फलस्वरूप दवा कंपनियों की सहायता के लिए एक सहायक उद्योग भी खड़ा हो गया है। यह उद्योग क्लिनिकल टेस्टिंग यानि मानव परीक्षणों और दवा विकास के अन्य पहलुओं से जुड़ा है। कई कंपनिया ऐसी बन गई हैं जिनका काम दवा कंपनियों को नई दवाओं के विकास और परीक्षण में सेवाएं प्रदान करना है। इन कंपनियों को कांट्रेक्ट रिसर्च आर्गेनाईजेशन कहते हैं। ये दवा कंपनियों के लिए जानवरों में परीक्षण का काम करते हैं, मानव परीक्षणों के तीनों चरणों में सहायता देते हैं, परीक्षणों के लिए अस्पतालों और बीमार लोगों की पहचान कर दवा कंपनी में साथ समन्वय करवाते हैं, दवा नियंत्रक से मंजूरी पाने के लिए जरूरी कागज़ी कार्यवाही करते हैं। ऐसी और अन्य कई सेवाओं से दवा कंपनियों का काम हल्का हो जाता है और नई दवाएं बाज़ार में लाने की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है।

ये कांट्रैक्ट सेवा कंपनियां किसी एक देश में नहीं बल्कि कई देशों में काम करती हैं। विशेषकर मानव परीक्षणों के लिए इन कंपनियों की सेवाएं ली जा रही हैं। गरीब देशों में अलग-अलग बीमारियों से ग्रस्त लोगों की कमी नहीं है। और यही इन सेवा कंपनियों की पूंजी है। अमरीका और यूरोप की दवा कंपनियों के पास दवाओं के मानव परीक्षणों के लिए लोगों की भारी कमी है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के कैंसरों के लिए जिनकी दवाएं प्रयोगशाला में तैयार हैं - कुल एक लाख चौंतीस हज़ार कैंसर मरीज़ों की ज़रूरत है जबकि अमरीका में परीक्षणों के लिए उपलब्ध है केवल ५२ हजार। इसी प्रकार जहां अमरीका में टीबी के यदि १०० मरीज हैं तो भारत में यह संख्या तीस हज़ार है। लगभग हर प्रकार की बीमारियों के मरीज़ भारत में मिल जाएंगे।

इसी कारण आज विश्व की बड़ी दवा कंपनियाँ और उनके डालरों पर अपना कारोबार चला रही सेवा कंपनियां भारत की तरफ ललचाई नज़रों से देख रही हैं। कई भारतीय कंपनियां भी चाहती हैं कि भारत अपने दरवाज़े खोल दे क्लिनिकल ट्रायल्स यानि मानव परीक्षणों के लिए। अभी भारत में उन्हीं दवाओं का मानव परीक्षण किया जा सकता है जो भारत में विकसित की गई हैं। एक और प्रावधान है कि यदि किसी दवा का परीक्षण जनक देश में हो रहा है तो उसके एक चरण पीछे का परीक्षण भारत में हो सकता है। यदि किसी दवा का अमरीका में मानव परीक्षण का दूसरे या तीसरे चरण चल रहा है तो भारत में उसके पहले और दूसरे चरण की मंजूरी दी जा सकती है। यह बात और है कि कई कंपनियां और वैज्ञानिक इन नियमों को ताक पर रख कर भारत में गैर कानूनी मानव परीक्षण करते आ रहे हैं। लेकिन दवा कंपनियों के दबाव की वज़ह से अब भारत सरकार नियम भी बदलने को तैयार है।

बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां और भारत की बडी दवा कंपनियां भारत को क्लिनिकल ट्रायल्स या मानव परीक्षणों का मुख्य केंद्र बनाना चाहती हैं। इन कंपनियों को इसके कई फायदे हैं - मानव परीक्षणों का खर्च भारत में अमरीका से कई गुना कम है। यहां पर इन परीक्षणों के लिए जरूरी तकनीकी संसाधन (प्रशिक्षित डॉक्टर, नर्स आदि) काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। और सबसे बड़ा आकर्षण है - भारत के लोग। भारतीय मरीज़ों की गुणवत्ता भी अमरीकी मरीज़ों से अच्छी है क्योंकि एक आम भारतीय अपने जीवनकाल में बहुत कम दवाओं का सेवन करता है और उसका शरीर किसी भी नई दवा की क्षमता और असर जांचने के लिए ज्यादा लायक माना जाता है।

किसी भी मानव परीक्षण में मरीज़ों को शामिल करने के पहले उनसे उनकी सहमति ली जाती है, इसे तकनीकी भाषा में इनफर्म्ड कंसेंट कहा जाता है। यह एक तरह का फार्म होता है जिसमें परीक्षण के बारे में पूरी जानकारी होती है, दवा के फायदे और नुकसान बताए जाते हैं। सामान्यतः यह फार्म कई पन्नों का होता है, और इसकी भाषा काफी तकनीकी होती है। मरीज़ को इसे पढ़ कर इस पर पर हस्ताक्षर करने होते हैं। इसके बाद ही किसी को मानव परीक्षण में शामिल किया जाता है। एक और आवश्यकता है-परीक्षण के दौरान मरीज़ का डॉक्टर से लगातार संपर्क में बना रहना ज़रूरी है। यदि मरीज़ अस्पताल से काफी दूरी पर रहता है या किसी अन्य शहर में रहता है ता उसे आने जाने के खर्च का भी प्रावधान होता है। यदि परीक्षण के दौरान मरीज़ को दवा की वजह से कोई और बीमारी हो जाती है या चोट पहुंचती है, तो उसके पूरे इलाज के साथ-साथ पर्याप्त हर्जाना देने की भी व्यवस्था होती है। अमरीका में यह हर्जाना कई लाख डॉलर का भी हो सकता है।

लेकिन भारत में यह देखा गया है कि मानव परीक्षण की इन शर्तों को अक्सर अनदेखा किया जाता है। परीक्षणों के फायदे/नुकसान समझाए बिना ही उन पर दस्तखत के लिए जाते हैं। कई मरीज़ अनपढ़ होते हैं। इनके लिए उनकी भाषा में फार्म का विवरण समझाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए अस्पतालों में सामाजिक कार्यकर्ता होने चाहिए। जो मरीज़ को सब समझा सकें। हमारे कितने अस्पतालों में सामाजिक कार्यकर्ता नियुक्त हैं? परीक्षण के दौरान कई मरीज़ बीच में ही अस्पताल आना बंद कर देते हैं या अनियमित हो जाते हैं। यदि कोई दुष्प्रभाव होता है, तो डॉक्टर से संपर्क करने की व्यवस्था भी उनके पास नहीं होती। इन सब परिस्थितियों में मरीज़ का भारी नुकसान हो सकता है और नई बीमारियां भी हो सकती हैं। कई बार परीक्षण के दौरान मरीज़ों की मृत्यु होने का खतरा भी होता है। लेकिन दवा कंपनियों को इनसे क्या लेना? उनके लिए तो आदमी सिर्फ आंकडे हैं, जिनका होना नई दवा को बाज़ार तक पहुंचाने के लिए ज़रूरी है।

जिस देश में कुछ रूपयों के लिए लोग अपना खून और शरीर के अंग बेचने के लिए राजी हो जाते हैं, वहां पर ये आशा करना कि दवाओं के मानव परीक्षण कायदे से होंगे, बेमानी है। कई परीक्षण आज भी बिना किसी फायदे कानून के हो रहे हैं। दवा कंपनियां अस्पतालों और डॉक्टरों को प्रलोभन देती हैं। और डॉक्टर मरीज़ों को प्रलोभन देकर परीक्षण में शामिल करते हैं। भारत के दवा नियंत्रक के पास ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके ज़रिए वह सभी क्लिनिकल ट्रायल्स पर नज़र रख सके चाहे वे वैध हों या अवैध हों। आज तक किसी भी अवैध परीक्षण को रोकने या इनमें शामिल डॉक्टरों को सज़ा देने का काम नहीं हुआ है। हमारा कानून भी लचर है और दवा नियंत्रक की सारी व्यवस्था भी। कानून को सख्त बनाए और लागू करने की पूरी व्यवस्था किए बिना क्लिनिकल ट्रायल्स के लिए दरवाजे खोलना, देश को दवा कंपनियों को बेचने के बराबर होगा।